शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त-IV

मार्क्सवाद और शिक्षा के जरिए सामाजिक पुनरुत्पादन

अमन मदान
अनुवाद : करिश्मा बाजपेई

बहुत से मेरे दोस्त जो शिक्षा के क्षेत्र में गरीब बच्चों के लिए काम करते हैं, खुद को बहुत आशाहीन और हताश महसूस करते हैं। वे बताते हैं कि गावों और झुग्गी झोंपड़ी के स्कूलों में काम करते हुए उन्हें बहुत से ऐसे बच्चे मिलते हैं जो असाधारण और तेज बुद्धी वाले होते हैं और साथ ही शिक्षक भी अत्यंत संवेदनशील होते हैं। लेकिन इसके बावजूद, बिरले ही ऐसे बच्चे मिलते हैं जो इस ग्रामीण या शहरी गरीबी की रेखा को तोड़कर माध्यम वर्ग में शामिल हो पाते हैं। ये बच्चे ज्यादातर, जहां से अपना जीवन शुरू करते हैं, खुद को वहीं पाते हैं, ज्यादा से ज्यादा इस समाज की बनायी सामाजिक सीढ़ी के एक पायदान को पार कर पाते हैं और किसी कार्यालय में सहायक या सामान लाने ले जाने का रोजगार ही जुटा पाते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि इन्हें पर्याप्त संसाधन, अच्छे शिक्षक और स्कूल का ऐसा वातावरण जहां अच्छे शिक्षक काम कर पाएं नहीं मिल पाता। वैसे भी भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए यह कहा जाता है कि यह सिर्फ सपने दिखाती है, बहुत कम ही बच्चे इन सपनों तक पहुंचकर इनका फायदा अपने जीवन में उठा पाते हैं। यहां एक बड़ा सवाल यह उठता है कि ऐसा क्यों है कि बहुत से लोगों के अच्छे इरादों के बावजूद, स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी, गरीब परिवार के बच्चे ऐसे स्कूलों में शिक्षा पाते हैं जहां संसाधनों और माहौल की कमी है और इस समाज में अमीर कहलाये जाने वाले लोगों के बच्चे ऐसे स्कूलों में पढ़ते हैं जहां अच्छे शिक्षक और पर्याप्त संसाधन हैं?

कल ही की बात है, मैं अपने एक दोस्त से बात कर रहा था जब उसने किसी व्यक्ति के बारे में बताया जिसने कहानी सुनाने की कला में लन्दन से प्रशिक्षण लिया और भारत लौटकर इसी क्षेत्र में प्रशिक्षण दे रहा है। यह बच्चों के सीखने के स्तर को बढ़ाने का एक बहुत अच्छा तरीका है। लेकिन इस प्रशिक्षण में सिर्फ ऐसे स्कूल ही अपने शिक्षकों को भेज सकते हैं जो प्रशिक्षण की फीस जमा करने में सक्षम हैं। मेरा दोस्त इस बात को लेकर बहुत दुखी था। उसका कहना था कि सीखने के स्तर को बढ़ाने के विभिन्न तरीकों की आवश्यकता उन बच्चों को अधिक है जहां माहौल और संसाधनों की कमी है। लेकिन देखो यह सुविधाएं मिलती किसे हैं! ऐसा बार-बार क्यों होता है...

शिक्षा के समाज-शास्त्र का मार्क्सवादी नजरिया इसकी एक व्याख्या प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि, समाज खुद का पुनरुत्पादन करने और समान ढांचे को बनाए रखने की कोशिश करता है। ज्यादातर बदलाव सिर्फ ऊपरी शोभा को बढ़ाने वाले होते हैं। एक खेतीहर मजदूर का बच्चा स्कूल जा सकता है। स्कूल उनके स्वागत के लिए अपने भवन की रंगाई-पुताई करवा सकता है, कुछ संवेदनशील व्यक्ति हफ्ते में एक दिन अंग्रेजी सिखाने भी आ जाएंगे लेकिन इस स्कूल के बच्चे फिर भी हमारे सामाजिक ढांचे के आखरी पायदान पर ही बने रहेंगे और अमीरों के बच्चे ऊपरी पायदान पर। अगर देखा जाए तो समाज अपने इस ढांचे को बनाए

रखने के लिए स्कूलों का इस्तेमाल करता है। अगर वाकई में हम गरीबों के स्कूलों को बदलना चाहते हैं तो हमें एक सामाजिक क्रांति की जरूरत है। यह तभी संभव है जब सत्ता में रहने वाले समाज का एक बड़ा हिस्सा खुद में बदलाव लाएगा, तभी किसान के बच्चे का स्कूल भी उतना ही अच्छा होगा जितना कि एक समृद्ध व्यापारी के बच्चे का स्कूल। कई मार्क्सवादी समाजशास्त्रियों के अनुसार, स्कूल ही वह संस्था है जो इस प्रकार के समाज के निर्माण को बढ़ावा देता है, जिसे हम पूंजीवाद के नाम से जानते हैं।

क्या सभी मार्क्सवादी समाजशास्त्री यह मानते हैं कि इस प्रकार एक-दूसरे पर हावी होने वाले समाज के निर्माण में शिक्षा तंत्र का बड़ा हाथ है? बिल्कुल नहीं। हम बाद में दूसरे और ज्यादा जटिल नजरियों से शिक्षा को देखने का प्रयास करेंगें। हांलाकि, समाज के पुनरुत्पादन संबंधी मार्क्सवाद के जो सिद्धांत हैं वे दृढ़ता से कुछ बातें कहते हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता। यह हमें ठहर कर यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि आज भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था इतनी असमान और अन्यायपूर्ण क्यों है। यह उस ओर भी इशारा करते हैं कि क्यों शिक्षा में सुधार के इतने प्रभावशाली प्रयासों के बावजूद यह सारे के सारे प्रयास धरे रह जाते हैं। खैर इस स्पष्टीकरण में कुछ समस्याएं हैं जिन्हें हम बाद में समझेंगें। सबसे पहले हम यह समझने की कोशिश करते हैं कि शिक्षा के जरिए सामाजिक ढांचे के पुनरुत्पादन का मार्क्सवादी सिद्धांत है क्या।

अल्थ्सर और वैचारिक वर्चस्व की प्रणाली

लूई अल्थ्सर (1918-1990) शिक्षा के माध्यम से पुनरुत्पादन के सिद्धांत के सबसे बड़े समर्थकों में से एक थे। दरअसल पुनरुत्पादन का विचार उनके संस्कृति और शिक्षा पर अध्ययन का केन्द्रीय विचार था (अल्थ्सर 1971)। अन्य मर्क्सवादियों की तरह उनका यह मानना था कि मानव का सामाजिक जीवन खुश रहने या एक-दूसरे को पारस्परिक रूप से मदद करने के लिए नहीं बना है, बल्कि कुछ सामाजिक वर्गों के अन्य सामाजिक वर्गों पर हावी होने के लिए बना है। वर्तमान समय में, वह पूंजीपति ही था जिसने बाकी समाज पर अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए उसे ऐसे तरीकों से संचालित किया जो मुख्य रूप से पूंजीपति के लिए फायदेमंद हो, फिर चाहे इसके लिए पूरे समाज को कोई बड़ा खामियाजा क्यों न भुगतना पड़े।। पूंजीपति के लाभ के लिए ही जंगलों को कटा गया, मजदूरों का शोषण किया गया यहां तक की कानून भी उसके फायदों के लिए ही बनाए गए। समग्रता में देखें तो सामाजिक व्यावस्था वर्चस्व की व्यवस्था ही थी और उन्हें लाभ पहुंचा रही थी जो उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के शीर्ष पर थे।

हर समाज, वर्चस्व की हर प्रणाली के लिए यह आवश्यक होता है कि वह खुद को बनाए रखे। दूसरे शब्दों में, अगर कोई समाज अपनी संस्कृति को एक वर्ष से दूसरे वर्ष में पहुंचाने या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपने अथवा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्थांतरित करने के तरीके नहीं खोज पाएगा तो वह समाज कुछ ही समय में समाप्त हो जाएगा। अल्थ्सर मार्क्स का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि यह एक बच्चा भी देख सकता है। मार्क्स ने कहा है कि पुनरुत्पादन की दूसरी व्यवस्थाओं की तरह पूंजीवाद को न केवल चीजों का उत्पादन करना चाहिए, बल्कि इसे दिन प्रतिदिन, साल दर साल, पीढ़ी दर पीढ़ी खुद का भी पुनरुत्पादन करना चाहिए, नहीं तो यह समाप्त हो जाएगा। अल्थ्सर के लिए पूंजीवाद को वर्चस्व की प्रणाली के रूप में समझने के लिए आवश्यक था यह समझना कि इसका पुनरुत्पादन किस प्रकार हुआ है। उनका मानना था कि पूंजीवाद के पुनरुत्पादन में स्कूल और शिक्षा व्यवस्था का बड़ा हाथ रहा है।

अल्थ्सर का मानना था कि पूंजीवाद और राज्य एक-दूसरे से करीबी रूप से आपस में गुंथे हुए हैं। उस समय सामाजिक जीवन के सभी आयामों में राज्य का बड़ा दखल हुआ करता था। यह राज्य की नीतियां और कार्यवाहियां थीं जो यह फैसला करती थीं कि वह कैसे बढ़ेंगी या विफल होंगी, स्कूलों में क्या पढ़ाया जाएगा, शिक्षक बनने के लिए क्या योग्यता होगी, इत्यादि। उनका मानना था कि, बदले में राज्य, पूंजीपतियों के नियंत्रण में था और उनकी रक्षा करने के लिए काम किया करता था। ऊपरी तौर पर चाहे ऐसा लगे कि पूंजीपतियों के विरुद्ध कुछ किया जा रहा है, पर वास्तविकता

में जब पूंजीपतियों पर दबाव बनाया जाता तो राज्य इन्हीं सामाजिक वर्गों और दबावों के खिलाफ उनका बचाव करने लिए खड़ा रहता। उनका यह मानना था कि राज्य, उत्पादन के उन तरीकों को बनाए रखने व उनका पुनरुत्पादन करने के लिए काम करता और यही पूंजीवाद था।

राज्य यह काम कुछ संस्थानों के माध्यम से किया करता था जिन्हें ''राज्य का तंत्र'' कहा जाता था। इनमें से एक हिस्सा राज्य के दमनकारी तंत्र का था जिसमें पुलिस, सेना, न्यायपालिका इत्यादि आते थे। ये पूंजीवाद को बनाए रखने के लिए सीधे हिंसा का प्रयोग करते थे। जब मजदूर बेहतर वेतन और बेहतर रहने की स्थितियों के लिए मांग करते थे, जब किसान अपनी फसलों के लिए बेहतर कीमत की मांग करते थे, तो उन्हें काबू में रखने के लिए पुलिस और न्यायपालिका का दखल हुआ करता था। जब पुलिस खुद को विफल महसूस करती तो सेना को बुलाया जाता। ये ऐसे संस्थान थे जो दमनकारी, हिंसक तंत्र के माध्यम से पूंजीवाद को पुनरुत्पादित करते थे। इन्हें देखना आसान था। अल्थ्सर के अनुसार राज्य का एक वैचारिक तंत्र भी था, जो आसानी से दिखाई नहीं देता था। यह समाज की संस्कृति के माध्यम से काम करता था और हिंसा के प्रत्यक्ष रूपों का उपयोग नहीं करता था। एक वर्ग द्वारा प्रचारित संस्कृति इसके वर्ग की स्थिति से जुड़ी हुई थी और कुछ खास एजेंडों को बढ़ावा दिया करती थी। चूंकि संस्कृति एक सामाजिक वर्ग की शक्ति से जुड़ी हुई थी, इसलिए वे इसके लिए 'विचारधारा' शब्द का उपयोग करना पसंद करते थे। विचारधारा से उनका आशय राजनीतिक दलों के आधिकारिक पक्ष व मान्यताओं से नहीं था, बल्कि उस संस्कृति से था जिसमें सत्ता निहित होती थी। उनका मानना था कि संस्कृति तटस्थ नहीं थी। इसे समूहों द्वारा अपने हितों व लाभों को साधने के लिए विकसित किया गया था। इसमें हमेशा कुछ मान्यताएं और मूल्य शामिल होते थे जो पूरे समाज के लिए निष्पक्ष होने की बजाए इसके रचनाकारों के अनुकूल होते थे। यही कारण था कि उन्होंने संस्कृति को शक्तिशाली वर्गों द्वारा रची गई एक विचारधारा कहा था। चर्च, स्कूलों, सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा प्रचारित सभी विचारधाराएं राज्य से प्रभावित थीं और राज्य और पूंजीवाद की उदारता और वैधता में भरोसा बनाए रखने के लिए काम करती थीं।

अल्थ्सर के अनुसार स्कूल पूंजीवाद के पुनरुत्पादन के लिए सबसे बेहतर स्थान था। यह कुछ खास प्रकार की विचारधाराओं को सिखा कर काम करता है और इस वजह से वर्चस्वशाली सामाजिक समूहों की भूमिका को पहचान पाना मुश्किल हो जाता है। उन्होंने कहा कि स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा, मूलतः इस प्रकार की होती थी जो भविष्य में पूंजीपतियों के श्रमिक के तौर पर उनकी भूमिका के लिए उपयोगी होती थी। यह उन्हें हाथ से काम करने वाले मजदूर, इंजीनियर, मैनेजर आदि बनना सिखाती थी। स्कूल बच्चों को ऐसी संस्कृति सिखाते थे जो पूंजीपतियों के लिए सबसे उपयोगी होती थी। यह शिक्षा उन्हें बोलने का सही तरीका, आदेशों का पालन करना और अन्य श्रमिकों को सबसे प्रभावी ढंग नियंत्रित करना सिखाती थी। इस प्रकार समकालीन युग में, पूंजीवाद के पुनरुत्पादन के लिए स्कूलों ने एक सशक्त माध्यम के रूप में काम किया।

विचारधारा और संस्कृति, अपरिष्कृत तरीके से काम नहीं करती थी। स्कूल की संस्कृति बहुत सरल व भद्र मानी जाती थी और लोगों ने इसे बहुत आसानी से स्वीकार कर लिया था। इसके द्वारा ही लोग समाज के पुनरुत्पादन के मोहरे बन रहे थे। देखा जाए तो यही विचारधारा हमें हमारी पहचान दे रही थी। यह स्कूल का माहौल ही हुआ करता था जहां बच्चे खुद को एक ''अच्छे'' श्रमिक और एक ''अच्छे'' प्रबंधक के रूप में देखना सीखते थे। यह सोच उनके आत्म सम्मान और आत्म छवि के साथ गुंथ गयी थी। विचारधारा किसी समाज के पुनरुत्पादन का बहुत प्रभावी तरीका था हिंसा के सीधे इस्तेमाल की धमकी देकर दबाने से भी ज्यादा प्रभावी।

अल्थ्सर के अनुसार यह जो हमारी धारणा है कि हम स्वतंत्र हैं, और अपनी पहचान स्वयं बनाते हैं और अपने मन से काम करते हैं, यह महज एक भुलावे के अलावा और कुछ नहीं। स्कूल का माहौल बच्चों को शिक्षकों और पाठ्यचर्या की अपेक्षाओं को पूरा करना बहुत आसानी से सिखा देता था। ऐसा कोई भी छात्र जो इस बनावट को स्वीकार नहीं

करता था वह बहुत दबाव महसूस करता था। यह दबाव इसलिए इतना प्रभावी हुआ करता था क्योंकि वह छात्र के अन्दर से उत्पन्न होता था, बाहर से नहीं। धीरे-धीरे वह छात्र अपना आत्मविश्वास खो देता और खुद पर ज्यादा से ज्यादा संदेह करने लगता। ऐसी शिक्षा लेना जिससे पारंपरिक नौकरी मिल जाए यह ऐसी बात थी जिसे हर कोई कहता था और इसीलिए इसमें भरोसा करना बेहद आसानी भरा व सुविधाजनक था। इस प्रकार पूंजीवाद ने खुद को पुनरुत्पादित किया।

समाज और विचारधारा के अध्ययन के अल्थ्सर के दृष्टिकोण को संरचनात्मक मार्क्सवाद (Structuralist Marxism) कहा जाता है। उनका मानना था कि एक प्रकार की बुनियादी संरचना थी जिसे समकालीन समाज द्वारा आत्म-सात कर लिया गया खास कर पश्चिम में और यह संरचना उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा उपलब्ध करवाई गई थी। इस संरचना ने हमारे ऊपर बाहर से राज्य के एक दमनकारी तंत्र के जरिए और भीतर से विचारधारात्मक तंत्र के जरिए बहुत ही शक्तिशाली तरीके से कार्य किया। अल्थ्सर जैसे अन्य विद्वानों का मानना था कि ऐसे बहुत से अच्छे लोग थे जो ईमानदारी से स्कूली शिक्षा में सुधार करना चाहते थे। भारत में हमारे पास दिगन्तर, अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, एकलव्य, टीच फॉर इंडिया आदि जैसे शिक्षण संस्थान हैं जिनमें अत्यधिक प्रतिबद्ध, ईमानदार लोग हैं। कई स्कूलों में अत्यधिक समर्पित और जानकार शिक्षक हैं। अल्थ्सर के अनुसार इन सबके प्रयास असफल होने को अभिशप्त थे। समाज के ढांचे को उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा नियंत्रित किया जा रहा था जब कभी इन व्यक्तियों व संस्थानों के काम ने इसके सामने किसी तरह का खतरा पैदा करना शुरू किया उन कामों को या तो अवरुद्ध कर दिया गया या उनके पर कतर दिए गए। अंततः कुल मिला कर इन संस्थानों का उद्देश्य उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के लिए अच्छे श्रमिकों और प्रबंधकों का निर्माण करना ही होगा। व्यक्तिगत भावनाएं और व्यक्तिगत इच्छाशक्ति समाज को बदल सकती हैं इस मान्यता को उन्होंने ''मानवता'' (Humanism) कहा था और इसे झूठी चेतना का हिस्सा घोषित किया था। उनका कहना था कि इस तरह के मानवतावादी कार्यों के माध्यम से ढांचा नहीं बदलता बल्कि यह केवल एक ऐसी विचारधारा के हिस्से के रूप में कार्य करते हैं जो उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था को ही वैधता देती है।

सैमुअल बॉल्स एवं हर्बर्ट गिंटिस : शिक्षा का सामंजस्य/अनुरूपता (CORRESPONDENCE) का सिद्धांत

इसी प्रकार अन्य मार्क्सवादी विद्वानों का भी यह मानना था कि शिक्षा उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के पुनरुत्पादन की जगह है। शायद इस बारे में सबसे व्यापक रूप से पढ़ी जाने वाली किताब अमरीकी अर्थशास्त्री सैमुअल बाउल्स और हर्बर्ट गिंटिस की *'स्कूलिंग इन कैपिटलिस्ट अमेरिका'* रही है, जिसे पहली बार 1976 में प्रकाशित किया गया था। भारत में हम अक्सर हमारे समकालीन स्कूल सिस्टम के विकल्प के रूप में अमेरिका के 'कॉमन स्कूल सिस्टम' मॉडल के बारे में सुनते हैं। अनिल सद्गोपाल और कई अन्य लोग इस बारे में बात करते हैं कि कैसे एक आम विद्यालय जिसमें पड़ोस के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से जाना चाहिए, सामाजिक असमानता का जवाब हो सकता है। इस तरह के स्कूलों को 19वीं शताब्दी के मध्य में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचारित किया गया था और यह सबसे व्यापक स्कूली मॉडल बना और लगभग सभी बच्चे इनमें दाखिल हुए। जब सभी बच्चे एक ही स्कूल में जाएंगे तो अमीर और गरीब के बच्चों का जो फर्क है वो मिट जाएगा और न चाहते हुए भी अमीरों को उन्ही स्कूलों को समर्थन और सहयोग देना होगा। कॉमन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे एक-दूसरे का सम्मान करना सीखते हैं, साथ ही कक्षा में एक लोकतांत्रिक संस्कृति का निर्माण होता हैं जहां अमीर और गरीब दोनों बच्चे एक ही कक्षा में आपस में दोस्त होते हैं।

हालांकि बाउल्स और गिंटिस, अमरीकी स्कूलों की एक अलग ही तस्वीर दिखाते हैं। वे कहते हैं कि, अमरीका में आम लोगों के लिए शिक्षा की शुरुआत से ही उद्देश्य सामाजिक समानता लाना नहीं रहा बल्कि फैक्ट्रियों के लिए कर्तव्यनिष्ठ व कुशल श्रमिक पैदा करना रहा है। वे कहते हैं कि 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में और उससे पहले भी अमरीका में छोटे

स्कूल हुआ करते थे, लेकिन सिर्फ उन्हीं परिवारों के बच्चे उनमें दाखिल हो पाते थे जो समृद्ध भू-स्वामियों या व्यापारी वर्गों से होते थे। ऐसी स्कूली व्यवस्था का दबाव जिसमें सभी बच्चे जाएं, बाद में सामाने आया। यह इसी तर्क पर संभव हुआ कि इन स्कूलों ने बेहतर श्रमिकों का निर्माण किया है। यह उद्देश्य करों के माध्यम से समर्थित एवं सरकार द्वारा नियंत्रित स्कूलों की स्थापना के लिए एक दमदार कारण बन गया। एक औद्योगीकरण की ओर बढ़ते देश में, व्यापारियों को अब अपने श्रमिकों को प्रशिक्षित करने की लगत से छुटकारा मिल गया और इसका खयाल अब करदाता और आम शिक्षा प्रणाली रखने लगी। ये स्कूल सभी नागरिकों के लिए वास्तव में 'कॉमन' नहीं थे। अमीर गरीबों से अलग स्थान पर रहते थे और अलग स्कूलों में जाते थे। नस्लवाद और लिंगभेद स्कूली व्यवस्था में अन्तर्निहित थे। उनका कहना है कि अमरीका के स्कूल असमानता स्थापित करने के लिए बनाए गए थे न की समानता।

बाउल्स और गिंटिस का कहना है कि आर्थिक प्रणाली का स्कूली शिक्षा पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है। अमेरिकी स्कूल प्रणाली अनिवार्य रूप से उस देश के छोटे और बड़े पूंजीपतियों की जरूरतों के आसपास बनाई गई थी। इसलिए अर्थव्यवस्था की समस्याएं स्कूल प्रणाली में भी दिखाई देती हैं। वे इसे सामंजस्य या अनुरूपता (CORRESPONDENCE) का सिद्धांत कहते हैं, उदाहरण के तौर पर स्कूलों में जो होता है वह शिक्षकों और सिद्धांतों के विचारों का नतीजा नहीं है, बल्कि कार्यस्थल पर मौजूद रिश्तों से जो सबसे ज्यादा मेल खाता है वही होता है। स्कूल बोर्डों से प्रिंसिपल, प्रिंसिपल से प्रधानाध्यापक, प्रधानाध्यापकों से शिक्षकों और शिक्षकों से छात्रों तक, नियंत्रण का पदानुक्रम कारखानों में स्थापित पदानुक्रम जैसा ही होता है। छात्र और शिक्षक अपने से ऊपर वालों के दबाव में रहना वैसे ही सीखते हैं, जैसे श्रमिक अपने पर्यवेक्षकों और प्रबंधकों के नियंत्रण में रहते हैं। उनके पास श्रमिकों के बराबर ही आजादी होती है।

स्कूल की संस्कृति पूंजीवादी कारखाने की संस्कृति से मेल खाती है। छात्र विषय के आनंद और उनके दैनिक जीवन में इसकी सार्थकता की बजाय शिक्षकों की प्रशंसा और ग्रेड जैसी बाहरी प्रेरणाओं पर ध्यान केंद्रित करना सीखते हैं। यह उस श्रमिक की स्थिति की तरह है जो अपने श्रम से अलग हो गया है और मुख्य रूप से वेतन और पदोन्नति जैसे बाहरी लाभों के लिए काम करता है। अपने काम से अलग होने का अनुभव वैसा ही है जैसे सीखने से अलग हो जाना, जहां अलग-अलग विषयों का एक-दूसरे पर बहुत कम या कोई प्रभाव नहीं है। जैसे एक निचले पायदान पर काम करने वाले श्रमिक का पर्यवेक्षण किया जाता है ठीक वैसे ही स्कूलों को भी एक सतत पर्यवेक्षण और नियंत्रण की जगह माना जाता है क्योंकि उनके स्वयं काम करने की क्षमता पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। जैसे-जैसे श्रमिक नियमों का पालन करना सीख जाते हैं और उन्हें आत्मसात कर लेते हैं, तो वे उच्च पर्यवेक्षी स्तर पर चले जाते हैं जहां उन पर कम नजर रखी जाती हैं। प्रबंधक भी पूंजीवादी मालिकों के हितों को पूरी तरह से आत्मसात कर लेते हैं और उन्हें इस तरह सतत आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं जैसे कि वे स्वयं उनके ही हित हों। इसलिए उन्हें काम करने और निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। यह एक तरह से छात्रों के उच्च शिक्षा की तरफ बढ़ने पर कम होते हुए निरीक्षण के समान है। जो लोग सत्ता को चुनौती देते हैं और सत्ता जो मानती है उसकी बाजाय जो उन्हें सबसे ठीक लगता है वही करना चाहते हैं, उन्हें जल्द ही इस व्यवस्था से बाहर कर दिया जाता है, और केवल उन्हीं लोगों को आगे बढ़ाया जाता है जिन्होंने सत्ता के मानदंडों को आत्मसात कर लिया है। स्कूलों में भी बेहतर ग्रेड उन्हीं छात्रों को मिलती है जो आदेशों का पालन करते हैं और विनम्र रहते हैं, न कि उन्हें जो रचनात्मक और मुखर होते हैं।

हालांकि उनकी पुस्तक मूल रूप से अमरीकियों के बारे में थी, मगर सैमुअल बाउल्स (1978) का कहना है कि यह पैटर्न उन देशों में भी दिखाई देता है जिन्होंने अभी तक पूंजीवादी उद्योग में पूरी तरह से कदम नहीं रखें हैं, जैसे कि भारत। ऐसे देश जहां अभी पूरी तरह औद्योगिकरण नहीं हुआ है वहां श्रमिकों का कुछ हिस्सा सफेद कॉलर कहे जाने वाले श्रमिकों में बंट गया है जो बाकी श्रमिकों से एक बेहतर जीवनशैली का आनंद लेते हैं। किसान और शहरों में दैनिक मजदूरी में लगे हुए श्रमिक, शिक्षित लोगों को देख उनकी संपत्ति और जीवन जीने के तरीकों से ईर्ष्या करते हैं। हालांकि अर्थव्यवस्था ऐसी है कि केवल कुछ ही लोगों को सफेदपोश/सम्मानित नौकरियां मिल सकती हैं। ज्यादातर को कम

वेतन, अनियमित काम या उत्पादन के कम मूल्यों पर ही खुद को संतुष्ट करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भी, शिक्षा प्रणाली देश की आर्थिक असमानताओं के साथ मेल खाती है। स्कूलों की एक छोटी संख्या ही प्रभावी ढंग से काम करती है। शेष जनसंख्या या तो शिक्षा तक पहुंच नहीं पाती या कम गुणवत्ता वाले स्कूलों में जाती है। यह स्थिति कम संख्या में ही लोगों को बेहतर भुगतान करने वाली नौकरियों में अपना दावा करने की इजाजत देती है। बाकी के लिए, यह स्पष्टीकरण है कि चूंकि उनके पास योग्यता नहीं है, इसलिए वे नियमित नौकरी, पर्याप्त चिकित्सकीय देखभाल और अच्छी जिंदगी जीने के लायक नहीं हैं।

इस प्रकार शिक्षा प्रणाली असमानता को प्राकृतिक बना देती है। यह न केवल सही लगने लगता है बल्कि निष्पक्ष भी लगता है। इससे गरीबों को यह सवाल पूछने से रोक जाता है कि - ऐसा क्यों है कि केवल कुछ लोगों के पास एक बेहतर जीवन शैली है? अधिक लोगों के पास नियमित नौकरियां, चिकित्सा और रहने के लिए एक स्वच्छ जगह क्यों नहीं हो सकती है? ऐसा कोई बुनियादी कानून नहीं है जो कहता हो कि भारत के लगभग 20 प्रतिशत के पास ही यह सब होना चाहिए। इस तरह के मार्क्सवादियों के पुनरुत्पादन सिद्धांत का कहना है कि किसी देश में कम या ज्यादा सम्पत्ती का पैटर्न उस देश को नियंत्रित करने वाले लोगों की वजह से देखने को मिलता है। जब उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था हावी होती है, तो किसी विशेष देश में या आजकल वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में शिक्षा प्रणाली पूंजीवाद कैसे काम करता है, उससे साम्य बिठाने के लिए संचालित होती है। यह निष्पक्ष प्रणाली या किसी सार्वभौमिक न्याय का नतीजा नहीं है। यह पूंजीपतियों के भौतिक व सांस्कृतिक वर्चस्व और उनके लिए काम करने वाले प्रबंधकों के वर्चस्व का नतीजा है।

प्रतिभा के आधार का विचार यह है कि समाज में उच्च और निम्न पदों के लिए लोगों का उचित चयन होना चाहिए। पूंजीवाद के तहत उच्च पदों की संख्या जानबूझकर ज्यादा अमीर लोगों के लाभ को ध्यान में रखकर सीमित की जाती है। जैसा कि बॉल्स कहते हैं, कम औद्योगिक देशों में, क्योंकि सफेदपोश नौकरियां बहुत दुर्लभ हैं, शिक्षित वर्ग गरीबों की शिक्षा में सुधार करने में कोई रूचि नहीं दिखाता है। क्योंकि पर्याप्त नौकरियां नहीं हैं ऐसे में गरीबों को और अधिक शिक्षा देने से प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी और इससे मध्यम वर्ग के बच्चों का मध्यम वर्ग में बन रहना और मुश्किल हो जाएगा। इसलिए शिक्षित वर्ग मुख्य रूप से अपने बच्चों की देखभाल करने पर ध्यान देता है और ऐसा समय आने से घबराता है जब गरीब उनके साथ प्रतिस्पर्धा करना शुरू कर देंगे। यह एक जबरदस्त व्याख्या है जो बताती है कि भारत में गरीबों के लिए स्कूली शिक्षा इतनी कमजोर क्यों है, जबकि मध्यम वर्ग अपने बच्चों के लिए बेहतर से बेहतर स्कूल चाहता है। ऐसी स्थिति में प्रतिभा का आधार कुछ हल्का पड़ जाता है। प्रतिभा के विचार को दरअसल ज्यादा उचित आधार विकसित करना चाहिए जहां सभी को अच्छे स्कूल मिलें और फिर उनकी रुचि और हितों के अनुसार विभिन्न पदों के लिए सर्वोत्तम का चयन किया जाए। इसके बजाय आज प्रतिभा का मतलब है कि अधिक संसाधन वाले बच्चे सर्वोत्तम पदों के पात्र हैं और गरीबों के बच्चों के लिए कुछ भी नहीं है (क्योंकि उनके पास 'योग्यता' नहीं है)। प्रतिभा इस मायने में विकृत हो जाती है जब पूंजीपतियों द्वारा अर्थव्यवस्था को इस तरह विकसित करने के लिए मजबूर किया जाता है कि केवल कुछ ही धनवान हो सकते हैं और दूसरों को या तो उनकी सेवा करनी चाहिए या गरीब रहना चाहिए।

मार्क्सवादी परंपरा में बाउल्स और गिंटिस और कई अन्य लोग तर्क देते हैं कि प्रतिभा और विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा की ऐसी विचारधारा दरअसल कम संसाधनों वाले लोगों को एकजुट होने और व्यवस्था को बदलने के लिए एक साथ आने से रोकती है। वे प्रतिभा न होने के लिए उत्पादन की पूंजीवादी व्यावस्था को को दोषी ठहराने के बजाए खुद को और अपने बच्चों को दोष देते हैं। यह भारतीय सामाजिक पदानुक्रम के शीर्ष पर स्थित वर्गों के लिए बहुत सुविधाजनक है। यह उन्हें सत्ता में बने रहने में मदद करता है और उन्हें वहां तक पहुचने वालों को एक उदाहरण की तरह प्रस्तुत करने में भी मदद करता है कि कड़ी मेहनत और ''प्रतिभा'' ही इस स्थान तक पहुंचने की कुंजी है। इस

तरह का जश्न उनके विशेषाधिकारों को न्यायसंगत ठहराता है और इस तथ्य को छुपाता है कि शीर्ष पर मौजूद अधिकांश लोगों को नीचे की ओर से संघर्ष नहीं करना पड़ा, बल्कि यह उन परिवारों में पैदा हुए लोग हैं जिन्हें पहले से ही कई सामाजिक फायदे उपलब्ध थे। इसका परिणाम सामाजिक असमानता के पुनरुत्पादन और उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के पुनरुत्पादन के रूप में सामने आता है।

उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा नियंत्रित शिक्षा की समस्याओं का उत्तर व्यक्तिगत कार्यों से नहीं दिया जा सकता। एक आदर्शवादी जो संभवतः सबसे अच्छे तरीके से पढ़ाना चाहता है, जल्द ही पूंजीवाद से बढ़ने वाली समस्याओं से प्रभावित होगा। यदि आप आज भारत में अपने-आपसे एक अच्छा स्कूल स्थापित करना चाहते हैं, तो सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वित्तीय रूप से इसका समर्थन कैसे किया जाए। मध्यम वर्गीय वेतन देने के लिए धन चाहिए जिसकी कि अच्छे शिक्षक मांग करेंगे लेकिन गरीब लोग ऐसे शिक्षकों को बनाए रखने वाली फीस का भुगतान नहीं कर सकते हैं। इसलिए हम पूरे भारत में यह पाते हैं कि कृष्णमूर्ति फाउंडेशन, सेंटर फॉर लर्निंग, प्रक्रिया आदि जैसे अच्छे संस्थान जो सार्थकता के साथ व प्रबुद्ध शिक्षकों द्वारा बनाए गए हैं, भारत के अधिकांश गरीबों की पहुंच से बाहर हैं। केवल अपेक्षाकृत समृद्ध तबका ही इनका खर्च वहन कर सकता है। ऐसे स्कूलों के बच्चे ही बेहतर सीखते हैं और भविष्य में मध्यम और उच्च-मध्यम वर्ग के सदस्य बनते हैं। इस प्रकार शिक्षा के वर्ग चरित्र का पुनरुत्पादन होता है।

अब सवाल यह है कि इस जाल से बहार कैसे निकला जाए? मार्क्सवादियों का कहना है कि इसे उत्पाादन की पूंजीवादी व्यवस्था के लिए एक मौलिक चुनौती के तौर पर सामने आना चाहिए। वर्तमान सत्ता व्यवस्था को गिराना होगा और नई व्यवस्था रचनी होगी। वे उन देशों के उदाहरण देते हैं जो वास्तव में सत्ता के पुनर्गठन से गुजरे हैं और कहते हैं कि वहां गरीब परिवारों के बच्चों को अच्छे स्कूलों में बेहतर पहुंच मिली है। एक क्रांति या किसी अन्य प्रकार के कठोर राजनीतिक परिवर्तन की आवश्यकता है। इससे एक नए वर्ग को शक्ति मिलेगी जो निम्न वर्गों और समुदायों तक पहुंच बढ़ाना चाहेंगे। तब जाकर गरीबों के बच्चे अपवाद रहने की बजाय बड़ी संख्या में आगे बढ़ने लगेंगे। तब जाकर प्रतिभा का असल विचार पैदा होना शुरू होगा।

पुनरुत्पादन के मार्क्सवादी सिद्धांत का मूल्यांकन

उन तरीकों के सापेक्ष जिनमें हम ज्यादातर शिक्षा के बारे में बात करते हैं उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था के पुनरुत्पादन का मार्क्सवादी सिद्धांत एक चकित कर देने वाला तरीका हमारे सामने रखता है। यह कहता है कि सामाजिक संरचना शक्तिशाली वर्गों द्वारा नियंत्रित की जाती है और शिक्षा प्रणाली अनिवार्य रूप से उस तरह की सामाजिक संरचना का पुनरुत्पादन करने में लगाई जाती है। लेकिन क्या यह सही है?

शिक्षा के जरिए सामाजिक पुनरुत्पादन के मार्क्सवादी सिद्धांत की कई प्रकार की आलोचनाएं की गई हैं। यह बताया गया है कि पूंजीवाद कई देशों में स्कूलों का भविष्य निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड में सभी बच्चों के लिए जन शिक्षा लागू करने से पहले लगभग एक शताब्दी से अधिक समय तक पूंजीवाद फला-फूला। इसी दौरान प्रूशिया में देखें तो वहां के राजा ने जन स्कूलों का समर्थन पूंजीवाद आने के बहुत साल पहले ही कर दिया था। यह सामंजस्य के सिद्धांत के अनुरूप नहीं लगता। स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी सिद्धांत के संस्करण में कुछ छूट रहा है जो शिक्षा प्रणाली को समझने के लिए अर्थव्यवस्था को केंद्र बनाता है।

यह भी बताया गया है कि भारत समेत कई देशों में स्कूल पाठ्यचर्या वास्तव में पूंजीवाद को प्रतिबिंबित नहीं करती है। यहां तक कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 जैसे दस्तावेजों पर सरसरी नजर डालने भर से कई ऐसे पहलू उभर कर सामने आ जाते हैं जो पूंजीवादी एजेंडा से मेल नहीं खाते हैं। जिन देशों में पूंजीवाद का सबसे उन्नत रूप मौजूद है उनमें कक्षा गतिविधियों के अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में छात्र पाठ्यचर्या को गंभीरता से नहीं लेते हैं। वे विभिन्न तरीकों से स्कूल के अधिकारियों का विरोध करते हैं व उपहास उड़ाते हैं और धीरे-धीरे उनसे दूर

हो जाते हैं। यह इस दावे से मेल नहीं खाता है कि स्कूल एक ऐसी जगह है जहां सिर्फ श्रमिकों पर मतारोपण किया किया जाता हैं।

ऐसी और अन्य मिलती-जुलती समस्याओं के चलते इन सिद्धांतों में सुधार हुआ है और इसे अक्सर शिक्षा का नव-मार्क्सवादी समाजशास्त्र कहा जाता है। समाज में सत्ता का वितरण वास्तव में स्कूलों के संचालन और संचालन के तरीके पर एक बहुत जबरदस्त प्रभाव डालता है। लेकिन शिक्षा की एक और परिष्कृत तस्वीर लुई अल्थ्सर और अन्य लोगों द्वारा बनाई गई है। जिसे हम अगले लेख में देखेंगें। ◆

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

संपर्कः amman.madan@apu.edu.in

संदर्भ और अतिरिक्त रीडिंग्स :

Althusser, Louis. 1971. "Ideology and Ideological State Apparatuses." In Lenin and Philosophy and Other Essays, 127-186. Monthly Review Press.

Bowles, Samuel. (1971) 2010. "Poonjiwadi Vikas AurShaikshikSanrachna." Shiksha Vimarsh, June, 90-104.

Bowles, Samuel. 1978. "Capitalist Development and Educational Structure." World Development 6: 783-96.

Bowles, Samuel, and Herbert Gintis. (1976) 2011. Schooling in Capitalist America: Educational Reform and the Contradictions of Economic Life. Haymarket Books.